तुलसी स्मृति ग्रंथ

a

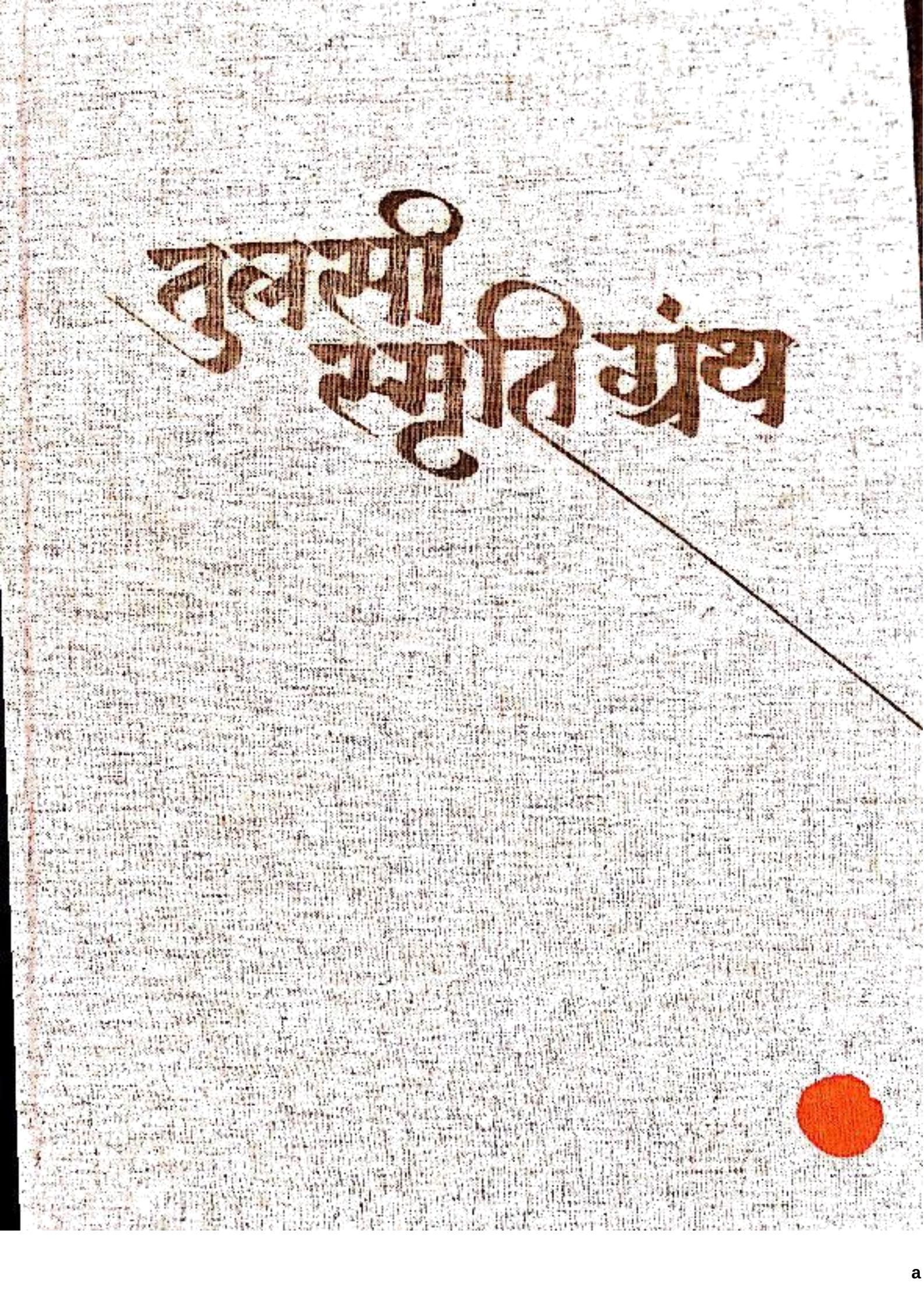

तुलसी स्मृति ग्रंथ
प्रथम संस्करण-2014
ISBN 978-81-930198-0-1
₹ 5,100/-

प्रकाशक :
आचार्य तुलसी जन्म शताब्दी समारोह समिति
अणुव्रत भवन, 210, दीनदयाल उपाध्याय मार्ग
नई दिल्ली-110 002
फोन : +91-11-23236728, 23212123
ई-मेल: info@jstmahasabha.org

J.V.B. INSTITUTE
Central Library
LADNUN (RAJ.)

Jain Vishva Bharati Institute
Accession No. Gn. 5053

प्रायोजक :
श्री रमेशकुमार धाकड़
मुम्बई, महाराष्ट्र

AC.
294.4551
TUL-C
V.1

मुद्रक :
प्रगति ऑफसेट प्रा.लि.
हैदराबाद-500 004
तेलंगाना

परिकल्पना :
आवरण एवं पृष्ठ सज्जा: संजीव बोथरा, रचिता राठवान
निरूपण कार्य: क्रेयोन्स, जयपुर
छायाचित्रकार: रघु राय, नई दिल्ली
छायाचित्र सौजन्य: धरम सज्जन ट्रस्ट, जयपुर
हस्तलेखन: अमित खरसानी, अहमदाबाद

सर्वाधिकार सुरक्षित :
तुलसी स्मृति ग्रंथ के दोनों भाग में प्रकाशित संदेश, विचार, लेख, आलेख, संस्मरण, टाईम लाईन आदि जिसमें कैलिग्राफी द्वारा लिखित अक्षर, शब्द एवं चित्रांकन आदि को, हिस्से या पूर्ण रूप में किसी भी माध्यम, फोटो कॉपी, फोटोग्राफ, इलेक्ट्रोनिक, मैकेनिकल, रिकार्डिंग उपकरण इत्यादि द्वारा पुनः पत्र, पुस्तक, अन्य साहित्य एवं किसी भी रूप में उपयोग, प्रकाशित, प्रसारित कर, इनका इस्तेमाल/उपयोग/प्रयोग इत्यादि प्रधान संपादक/प्रकाशक की पूर्व अनुमति के बिना नहीं किया जा सकता है। प्रकाशित सभी छायाचित्र सिर्फ तुलसी स्मृति ग्रंथ में प्रकाशन हेतु संस्था विशेष और फोटोग्राफर विशेष द्वारा उपलब्ध कराए गए हैं। इन सभी छायाचित्रों के सर्वाधिकार (कॉपीराईट) संस्था एवं फोटोग्राफर के पास सुरक्षित है।

a

नैतिकता की गूंज : झोंपड़ी से राष्ट्रपति भवन तक	डॉ. ऊषा गोयल	630
अणुव्रत आंदोलन में पत्रकारों की भूमिका	जैन लूणकरण छाजेड़	638
अहिंसक विश्व-व्यवस्था में अणुव्रत की भूमिका	प्रो. रामजी सिंह	646

दर्शन के परिप्रेक्ष्य में

		651
अनेकांत और स्याद्वाद	आचार्य विद्यानंद मुनि	653
युगीन समस्याएं और अनेकांत	प्रो. के. एल. कमल	660
स्याद्वाद : भेद में अभेद का सर्जक	डॉ. समणी चैतन्यप्रज्ञा	662
अनेकांत और सह-अस्तित्व	डॉ. अनेकांत कुमार जैन	668
आचार्य तुलसी का अनेकांत दर्शन	डॉ. अशोक कुमार जैन	673
भारतीय संस्कृति पर जैन-धर्म का प्रभाव	आचार्य डॉ. शिवमुनि	679
आचार्य तुलसी का भारतीय संस्कृति को योगदान	महामहोपाध्याय दयानंद भार्गव	685
भारतीय दर्शनों में जैनदर्शन का वैशिष्ट्य	प्रो. प्रेम सुमन जैन	694
धर्म और दर्शन	डॉ. साध्वी मंगलप्रज्ञा	702
नियति बनाम पुरुषार्थ	प्रो. सागरमल जैन	706
विश्व-व्यवस्था और जैनदृष्टि	डॉ. साध्वी योगक्षेमप्रभा	718
लोक-अलोक के विभाजक तत्त्व	डॉ. साध्वी अक्षयप्रभा	725
जैनधर्म दृष्टि में मानव संस्कृति का उद्भव और विकास	डॉ. साध्वी चैतन्यप्रभा	728
जैन संस्कृति के मौलिक तत्त्व	डॉ. साध्वी ऋद्धियशा	733
जैन ज्ञान-मीमांसा	डॉ. साध्वी सुधाप्रभा	739
आचार्य तुलसी के साहित्य में कर्मवाद की अवधारणा	डॉ. समणी रोहिणी प्रज्ञा	749
पंचसमवाय- सम्यग्ज्ञान का आधार	डॉ. समणी आगमप्रज्ञा	754
हुसर्ल की फेनॉमेनॉलॉजी में जैन नयवाद की झलक	डॉ. समणी रोहितप्रज्ञा	758
जैन साहित्य में गणित के सिद्धांत	मुनि अभिजीतकुमार	762
दक्षिण भारत की संस्कृति को जैनधर्म का योगदान	समणी चारित्रप्रज्ञा	766
वर्तमान अर्थचिंतन-अर्थव्यवस्था एवं सापेक्ष अर्थशास्त्र	डॉ. बजरंग लाल गुप्ता	772
जैनधर्म और आध्यात्मदृष्टि	डॉ. श्रीमती कल्पना जैन	776
आगम संपादन : एक पर्यवेक्षण	मुनि योगेशकुमार	781
बीसवीं सदी के आगम-वाचनाकार आचार्य श्री तुलसी	प्रो. फूलचंद जैन प्रेमी	789

स्याद्वाद : भेद में अभेद का सर्जक

डॉ. समणी चैतन्यप्रज्ञा

स्याद्वाद जैन दर्शन के तत्त्व-विश्लेषण का बहुआयामी एवं सापेक्ष प्रतिपादन का एक विशिष्ट सिद्धांत है। ईसा पूर्व छठी शताब्दी में यह सिद्धांत अस्तित्व में आया जिसने दर्शन के क्षेत्र में एक क्रांति की। तत्त्व-विश्लेषण और प्रतिपादन की एक नई दृष्टि दी। जैन आचार्यों ने दर्शनयुग में इसे अनेकांतवाद नाम दिया और वर्तमान में यह जैन दर्शन के उदारवादी और वैज्ञानिक चिंतन के प्रतिनिधि सिद्धांत के रूप में प्रतिष्ठा प्राप्त कर चुका है। बीसवीं सदी में इसके समानांतर सापेक्षता का सिद्धांत (Theory of Relativity) अस्तित्व में आया जिसने विज्ञान के क्षेत्र में क्रांति की। परिणामस्वरूप न्यूटन के समय से चली आ रही अनेक बद्धमूल धारणाओं में परिवर्तन हुआ।

किसी भी वस्तु या घटना को अनेक दृष्टियों से देखना, जानना और समझना अनेकांतवाद है और उसका सापेक्ष प्रतिपादन करना स्याद्वाद है। 'स्याद्वाद' शब्द 'स्याद्' और 'वाद' इन दो शब्दों के योग से बना है। 'स्याद्' अपेक्षासूचक अव्यय है और 'वाद' सिद्धांतसूचक शब्द। अतः इस व्युत्पत्ति के अनुसार अपेक्षा पर आधारित सिद्धांत या अपेक्षावाद, स्याद्वाद है।

स्याद्वाद भेद में अभेद का सर्जक है। भेद में अभेद का सर्जक से तात्पर्य स्याद्वाद एक ही वस्तु के विषय में भिन्न-भिन्न प्रतीत होने वाले विचारों में समन्वय करने वाला एक विशिष्ट सिद्धांत है। प्रत्येक वस्तु द्वंद्वात्मक (Dual) या बहुआयामी (Multy-dimensional) है। सामान्य रूप से कोई भी व्यक्ति या ज्ञाता वस्तु के सभी आयामों या धर्मों को एक साथ न तो देख सकता है और न ही जान सकता है। केवल ज्ञानी जान सकता है पर अभिव्यक्त नहीं कर सकता, क्योंकि भाषा की अपनी सीमा है। एक शब्द, एक समय में, एक से अधिक अर्थ को अभिव्यक्त नहीं कर सकता। ऐसी स्थिति में सापेक्ष प्रतिपादन ही वस्तु सत्य को समझने का एकमात्र निर्दोष मार्ग रह जाता है।

स्याद्वाद सिद्धांत के अनुसार किसी भी वस्तु और घटना के विषय में जब कभी कोई मत प्रकट किया जाता है तो वह किसी न किसी दृष्टि, संदर्भ अथवा वस्तु के धर्म विशेष पर आधारित होता है। तात्पर्य है कि जब कभी हम किसी वस्तु को देखते हैं या उसके बारे में कुछ कहते हैं, किंतु उसके विषय में प्रस्तुत किया गया मत निरपेक्ष नहीं हो सकता। इसका कारण हमारे दृष्टिकोण और विचारों की एकांगिकता नहीं अपितु वस्तु का बहुआयामी स्वरूप होता है। एक ही वस्तु विभिन्न देश, काल और परिस्थितियों में अनेक रूपों में अभिव्यक्त होती है। आज जिसका जन्म हुआ वह बालक कहलाता है, कल वही युवा, प्रौढ़ और वृद्ध कहलाता है। एक ही व्यक्ति किसी का पिता, किसी का पुत्र, किसी का पति और किसी का भाई होता है। एक ही आम अपक्व अवस्था में खट्टा और पक जाने पर मीठा हो जाता है। अवस्था भेद से व्यक्ति भेद, संबंधियों के भेद से संबंध का भेद और गुण के भेद से वस्तु का भेद- यह सिद्धांत किसी की मान्यता पर आधारित नहीं है अपितु इसका आधार है-एक ही व्यक्ति या वस्तु का भिन्न-भिन्न अवस्थाओं में और भिन्न-भिन्न व्यक्तियों के साथ किया जाने वाला भिन्न-भिन्न प्रकार का व्यवहार है। स्याद्वाद वस्तुगत इन्हीं भेदों से अभेद अर्थात सामंजस्य खोजने का एक

तात्त्विक प्रयत्न है।

एक ही वस्तु में भेद भी है और अभेद भी क्योंकि उसमें सामान्य और विशेष दोनों ही प्रकार के धर्म पाए जाते हैं। किसी भी वस्तु को देखने, जानने और समझने की प्रमुख दो दृष्टियां हैं– संश्लेषणात्मक और विश्लेषणात्मक। जैनदर्शन में इन्हें क्रमशः द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक नय कहा जाता है। संश्लेषणात्मक दृष्टि वस्तु के सामान्य स्वरूप या धर्मों का ज्ञान करती है, वहीं विश्लेषणात्मक दृष्टि वस्तु के विशिष्ट धर्मों और अवस्थाओं का ज्ञान करती है। चूंकि सभी वस्तुएं सामान्य और विशेष दोनों रूप हैं अतः उनका ज्ञान उपर्युक्त दोनों दृष्टियों के योग से ही संभव है। यही अनेकांतवाद है। वस्तु को किसी एक दृष्टि से देखना एकांतवाद और दोनों दृष्टि से देखना अनेकांतवाद है। स्याद्वाद वस्तु के इसी अनेकांतस्वरूप की सापेक्ष अभिव्यक्ति का माध्यम है। स्याद्वाद विभिन्न दृष्टियों से, विभिन्न संदर्भों में और विभिन्न अपेक्षाओं के आधार पर किसी वस्तु या घटना का विश्लेषण कर उसके विषय में कोई निर्णय करता है।

स्याद्वाद न केवल दो वस्तुओं के भेद और अभेद संबंध को अपेक्षा विशेष के आधार पर स्वीकार करता है अपितु एक वस्तु में पाए जाने वाले भेद और अभेद को भी अपेक्षा विशेष के आधार पर स्वीकार करता है। जन्मांध व्यक्तियों ने हाथी के पैर, सूंड, पेट, कान और पीठ को अलग-अलग छूआ और हाथी को जाना। क्या पैर, पूंछ इत्यादि अवयव हाथी है? उत्तर होगा– नहीं। फिर पैर को छूने मात्र से हाथी का ज्ञान कैसे संभव है? द्रव्यार्थिक दृष्टि से अंश अंशी से सर्वथा पृथक नहीं होता। उनमें किसी अपेक्षा से तादात्म्य संबंध होता है। हाथी के विभिन्न अवयव हाथी के ही अंग हैं। यही कारण है कि अंश को देखकर अंशी का अनुमान किया जाता है। भिन्न-भिन्न अंगों का संबंध हाथी नामक एक ही पशु के साथ होने से वे पृथक-पृथक होते हुए भी अंगी की अपेक्षा से एक ही है।

स्याद्वाद की विशेषता यह है कि यह न केवल वस्तुगत भेद और अभेद को अपेक्षा विशेष से देखने, जानने और समझने पर बल देता है, अपितु भेद और अभेद दोनों को भी सापेक्ष मानता है। किसी की दृष्टि में जो वस्तु विशेष है वही किसी की दृष्टि में सामान्य हो सकती है। उदाहरण के लिए, जहां 'गो' शब्द गाय नामक पशु की भैंस इत्यादि अन्य पशुओं से भिन्नता का बोध कराता है, वहीं वह गाय विशेष ही अन्य गायों के साथ समानता का भी बोध कराता है। इसी प्रकार मनुष्यत्व धर्म जहां मनुष्य को पशु से पृथक करता है वहीं वह एक मनुष्य और दूसरे मनुष्य में समानता भी दिखाता है।

इस प्रकार वस्तु एक होती है किंतु उसके विषय में मत अनेक होते हैं। जो वस्तु को समग्रता से नहीं देखता है उसे अपना मत सत्य और अपने से भिन्न मत असत्य प्रतीत होता है। एक ही वस्तु को दो व्यक्ति देखते हैं। प्रथम को वह लाल रंग की तो दूसरे को हरे रंग की दिखाई देती है। प्रथम सोचता है कि मैंने वस्तु को अपनी आंखों से देखा है और वह लाल रंग की है। अतः उसे हरे रंग की कहना उचित नहीं है। दूसरा ठीक इससे विपरीत सोचता है। जबकि सच्चाई यह है कि वस्तु दोनों– लाल और हरे रंग की है।

एक तरफ वह लाल रंग की है तो दूसरी तरफ हरे रंग की है। ऐसी स्थिति में मत प्रकट करते समय प्रथम का यह मानना है कि वह लाल रंग की ही है– गलत हो जाता है तो दूसरी तरफ हरे रंग की है– गलत हो जाता है। जब तक प्रथम और द्वितीय दोनों व्यक्तियों के मतों को सामने न रखा जाय तब तक वस्तु के वास्तविक रंग के बारे में जानना कठिन हो जाता है। जन्मांध व्यक्तियों के पैर, पूंछ, सूंड, पेट और कान के विषय में जो पृथक-पृथक अनुभव हैं जब तक उन्हें एक साथ रखकर न देखा जाय तब तक हाथी का पूर्ण स्वरूप जाना नहीं जा सकता है। एक ही वस्तु के विषय में प्रकट होने वाले भिन्न-भिन्न मतों की सत्यता को देखने और समझने के लिए अनेकांतवाद और स्याद्वाद जैसे सिद्धांतों की आवश्यकता है।

स्याद्वाद भेद में अभेद का सर्जक सिद्धांत है– इसे स्पष्ट करने के लिए आचार्य सिद्धसेन दिवाकर द्वारा रचित 'सन्मतितर्क' नामक ग्रंथ जिज्ञासु के लिए अत्यंत उपयोगी सिद्ध हो सकता है।

ईसा पूर्व छठी शताब्दी से ईसा की पांचवीं शताब्दी तक का काल आगम युग माना जाता है। ईसा की दूसरी शताब्दी से आठवीं शताब्दी तक का काल दर्शन युग माना जाता है। आगम युग में आप्तपुरुषों ने विशेष रूप से सुख-दुःख, धर्म-अधर्म, पुण्य-पाप और बंधन-मोक्ष संबंधी विषयों पर अपना चिंतन प्रस्तुत किया। दर्शन युग विशेष रूप से जीवन, जगत और ईश्वर से जुड़े गंभीर प्रश्नों के समाधान का युग रहा। इस युग में सृष्टि, सृष्टिकर्त्ता और सृष्टि के आधारभूत तत्त्वों के स्वरूप को लेकर गहरा चिंतन हुआ। समाधानस्वरूप अनेक दार्शनिक विचारधाराएं अस्तित्व में आई। सन्मतितर्क दर्शनयुग का ग्रंथ है किंतु इसमें दोनों-आगमयुगीन और दर्शनयुगीन समस्याओं पर अनेकांतदृष्टि से विचार किया गया है। एक ही समस्या के समाधान हेतु उत्पन्न विभिन्न मतों में सापेक्ष दृष्टि से सामंजस्य स्थापित करने का प्रयत्न किया गया है।

स्याद्वाद एवं व्यवहार जगत्

जैनाचार्यों की दृष्टि में स्याद्वाद या अनेकांतवाद के बिना न केवल आध्यात्मिक और दार्शनिक प्रश्नों का समाधान पाना कठिन है अपितु व्यावहारिक जगत के प्रश्नों का भी समाधान पाना कठिन है। सन्मतितर्क में व्यावहारिक जगत से जुड़े अनेक प्रश्नों पर सापेक्ष दृष्टि से चिंतन हुआ है और उनका सामंजस्यपूर्ण समाधान प्रस्तुत किया गया है। उदाहरण के लिए एक व्यक्ति या वस्तु का अपनी विभिन्न अवस्थाओं से क्या संबंध है? इस प्रश्न पर जब विचार किया गया तो कुछ के मत में अवस्था भेद से व्यक्ति भेद का सिद्धांत सामने आया। उनके अनुसार बचपन से मृत्यु तक हर क्षण व्यक्ति बदल रहा है। अतः जितनी अवस्थाएं उतने ही व्यक्ति होते हैं। कुछ के मत से व्यक्ति ही वास्तविक है। उससे भिन्न अवस्थाओं का अपना कोई स्वतंत्र अस्तित्व नहीं है। अतः व्यक्ति अभेद से अवस्था अभेद का सिद्धांत अस्तित्व में आया। जैनदृष्टि जो सदा से अनेकांतवादी विचारधारा की संपोषक रही है, उसके अनुसार व्यक्ति और उसकी अवस्थाओं में भेद भी है और अभेद भी है। जब व्यक्ति की ओर दृष्टिपात करते हैं तो पाते हैं कि एक ही व्यक्ति विभिन्न अवस्थाओं से गुजरता है। बाल्यवास्था में जो बालक कहलाता था

वही युवावस्था में युवक कहलाता है। इस दृष्टि से व्यक्ति से अवस्थाएं भिन्न नहीं हैं। किंतु दूसरी ओर जब अवस्था की ओर दृष्टिपात करते हैं तो यह भी उतना ही सत्य है कि बाल्यावस्था और युवावस्था में व्यक्ति की शारीरिक, मानसिक और भावनात्मक स्थितियों में बहुत परिवर्तन हो जाता है। बचपन में जो शरारती था, वही युवावस्था में बहुत गंभीर हो जाता है। युवावस्था में यह कहना कठिन हो जाता है कि यह वही व्यक्ति है जिसे हमने बचपन में शरारत करते हुए देखा था। अतः अवस्था भेद से व्यक्ति भेद के सिद्धांत को सर्वथा अनुचित नहीं कहा जा सकता। जल और तरंग एक भी हैं और अलग भी। तात्विक दृष्टि से वे एक हैं, क्योंकि उनका अस्तित्व अलग-अलग नहीं हैं। प्रथम का अस्तित्व दूसरे पर और दूसरे का अस्तित्व प्रथम पर निर्भर करता है। किंतु आकार-प्रकार और गुणधर्मों की दृष्टि से वे अलग-अलग है। जल का कार्य तरंग और तरंग का कार्य जल नहीं कर सकता है। अतः व्यक्ति या किसी भी वस्तु का उसकी अवस्थाओं के साथ संबंध को ठीक से समझने के लिए आवश्यक है कि उसे उपर्युक्त दोनों भेदवादी और अभेदवादी विचारधाराओं के संदर्भ में देखा जाए और निर्णय किया जाए।

स्याद्वाद और आध्यात्म जगत

इसी प्रकार आध्यात्म जगत से जुड़े हुए अनेक ऐसे प्रश्न हैं जिन पर सापेक्ष दृष्टि से विचार आवश्यक है। उदाहरण के लिए वस्तु के वास्तविक स्वरूप की जिज्ञासा के सामाधान में अनेक मत हैं। एक मत के अनुसार वस्तु नित्य है। वह न उत्पन्न होती है और न ही नष्ट। दूसरे मत के अनुसार वस्तु अनित्य है, क्योंकि उसमें प्रतिक्षण परिवर्तन होता रहता है। फूल का रंग सुबह जैसा होता है शाम को वैसा नहीं रहता। किंतु यह भी सत्य है कि परिवर्तन होने पर भी किसी वस्तु का सर्वथा नाश नहीं होता। उसका मूल तत्त्व सुरक्षित रहता है। परिवर्तन केवल उसके गुणों और अवस्थाओं में होता है। ऐसी स्थिति में स्याद्वाद सिद्धांत के अनुसार उस वस्तु में मात्र नित्य या अनित्य कहना उपयुक्त नहीं है। वस्तु नित्यता और अनित्यता दोनों का योग है। नित्यता और अनित्यता दोनों में से किसी एक को मानने पर वस्तु का अस्तित्व ही समाप्त हो जाता है।

इसी प्रकार संसार या विश्व नित्य है या अनित्य? इस संदर्भ में विचार करते हैं तो संसार की वास्तविक स्थिति को जानने की दो दृष्टियां है– अभेद और भेद। अभेद दृष्टि से देखने पर सारे विश्व में एकता दृष्टिगोचर होती है, वहीं भेद दृष्टि से देखने पर विश्व में विविधता और अनेकता दृष्टिगोचर होती है। जबकि वास्तविकता यह है कि विश्व एक भी है अनेक भी है। वस्तुतः एकता में अनेकता और अनेकता में एकता का नाम ही विश्व है। इसी प्रकार जहां तक संसार की नित्यता और अनित्यता का प्रश्न है, विश्व की मूल द्रव्यराशि न कभी उत्पन्न होती है और न कभी नष्ट अतः विश्व नित्य है किंतु विश्व के मूलभूत द्रव्यों की अवस्थाओं और गुणों में निरंतर परिवर्तन होता रहता है अतः विश्व अनित्य है।

इसी प्रकार किसी व्यक्ति के सुखी और दुखी होने का प्रश्न तभी संभव है जब वह व्यक्ति स्थाई भी हो और परिवर्तनशील भी। एकांत नित्यपक्ष में किसी को सुखी या दुःखी कहना शक्य नहीं है अमुक

व्यक्ति पहले दुखी था और अब सुखी है अथवा पहले सुखी था और अब दुःखी है– यह कहना तभी संभव है जब वही व्यक्ति जो सुखी था दुखी बनता है और ऐसा होना नित्यपक्ष में संभव नहीं। एकांत अनित्यपक्ष में सुख या दुःख की कल्पना ही नहीं की जा सकती क्योंकि जब व्यक्ति का एक क्षण से अधिक अस्तित्व ही नहीं है तब व्यक्ति को सुख और दुख का अनुभव, जो दूसरे क्षण में होता है, कैसे हो सकता है? जीव अपने अतीत या वर्तमान जीवन में किए गए कर्मों के परिणामस्वरूप दुखी या सुखी बनता है और यह तभी संभव है, जब दो व्यक्ति नित्य और अनित्य दोनों हो। इसी प्रकार किसी भी व्यक्ति का बन्धन और मुक्ति भी तभी संभव है, जब वह नित्य और अनित्य दोनों हो। बंधनग्रस्त होता है वही साधना विशेष के द्वारा मुक्ति को प्राप्त करता है। बंधन और मुक्ति का किसी एक व्यक्ति से संबंध उसे नित्यानित्य माने बिना संभव नहीं है।

यह तो हुआ सम्मतितर्क में निहित सापेक्ष दृष्टि के आधार पर व्यवहार एवं आध्यात्म जगत से जुड़े कुछ प्रश्नों का समाधान। अब दर्शन जगत से जुड़े कुछ प्रश्नों पर विचार करें। देखें कि स्याद्वाद उन प्रश्नों के समाधानस्वरूप उत्पन्न भिन्न-भिन्न मतों का सापेक्ष दृष्टि से समन्वय कैसे करता है।

स्याद्वाद एवं दर्शन जगत

दर्शन और विज्ञान के क्षेत्र में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण और चर्चित सिद्धांत रहा है– कारण-कार्य का सिद्धांत। इस सिद्धांत के अनुसार प्रत्येक वस्तु जो हमें अपने आस-पास दिखाई देती है, उसका कोई न कोई कारण अवश्य होता है। वृक्ष है तो उसका कारण बीज है। वर्षा है तो उसका कारण बादल है। प्रश्न है कि कारण और कार्य का पारस्परिक संबंध क्या है? वे दोनों एक ही हैं या अलग-अलग? किसी के मत में अनेक घटकों या कारकों के मिलने पर किसी कार्य की उत्पत्ति होती है। किसी के मत में कार्य, कारण में पहले से ही निहित होता है अतः कार्य कारण का रूपांतरण मात्र है। एक मत के अनुसार कारण और कार्य दो नहीं हैं। कारण ही कार्य रूप में परिणत होता है। अतः कारण का ही अस्तित्व है, उससे भिन्न कार्य का कोई स्वतंत्र अस्तित्व नहीं है। प्रथम मत में मिट्टी के कणों के योग से घट का निर्माण होता है। द्वितीय मत में घट मिट्टी में अव्यक्त था और प्रक्रिया विशेष के द्वारा व्यक्त होता है। तृतीय मत में मिट्टी ही घट का आकार लेती है अतः घट मिट्टी से पृथक नहीं है। मिट्टी ही मूल तत्त्व है, घट नहीं। मिट्टी की घटाकार परिणति ही घट है।

प्रश्न है– इन तीनों मतों में से कौनसा मत सत्य है? स्याद्वाद सिद्धांत के अनुसार अपेक्षा विशेष से सभी मतों को समान रूप से सत्य माना जा सकता है। यह सत्य है कि प्रत्येक कार्य अनेक घटकों के योग से उत्पन्न होता है। कार या मकान बनाने के लिए अनेक पुर्जों और तत्त्वों का होना आवश्यक है। यह भी सत्य है, कार्य उत्पत्ति से पूर्व संभावना के रूप में अपने कारण में निहित रहता है अन्यथा किसी कार्य विशेष के लिए किसी कारण विशेष की खोज क्यों की जाती है? दही के उत्पादन के लिए दूध की ही आवश्यकता क्यों होती है? पानी की क्यों नहीं? तेल के लिए तिल ही क्यों चाहिए? बालू से तेल क्यों

नहीं निकाला जा सकता है? इसी प्रकार तीसरा मत भी समान रूप से सत्य है। आखिर कारण ही कार्य रूप में परिणत होता है। दूध ही प्रक्रिया विशेष से दही के रूप में परिणत होता है। तात्त्विक दृष्टि से कारण और कार्य दो नहीं हैं– यह तृतीय मत भी उचित है। अतः आवश्यकता है कि उपर्युक्त तीनों मतों को एक साथ रखकर कार्य–कारण सिद्धांत की समीक्षा की जाए तभी समस्या का उचित समाधान संभव है।

इसी प्रकार सृष्टि में होने वाली घटनाओं के कारण की जब मीमांसा करते हैं तो इस विषय में भी अनेक मत प्रस्तुत होते हैं। कुछ दार्शनिकों के मत में वैश्विक घटनाओं का कारण काल है। सब कुछ उचित समय आने पर ही होता है। समय अच्छा है तो व्यक्ति को हर कार्य में सफलता मिल जाती है। समय यदि खराब चल रहा है तो व्यक्ति कितना ही पुरुषार्थ करे सफलता नहीं मिलती। कुछ दार्शनिकों के मत में विश्व में जो कुछ हो रहा है उसका कारण काल नहीं कर्म है। कुछ के मत में पुरुषार्थ, कुछ के मत में वस्तु का स्वभाव और कुछ के मत में नियति वैश्विक घटनाओं की कारण है।

भगवान महावीर की दृष्टि से विश्व में जो कुछ हो रहा है उसके पीछे उपर्युक्त पांचों ही कारण कार्य करते हैं। कुछ घटनाएं काल के अधीन हैं तो कुछ कर्म, पुरुषार्थ, स्वभाव और नियति के अधीन। एकांत रूप से किसी एक को कारण मानने से अन्य अनेक घटनाओं की व्याख्या नहीं की जा सकती। आश्चर्य तो यह है कि प्रत्येक घटना में इन पांचों कारणों का न्यूनाधिक योग होता है। आम के बीज का बोना पुरुषार्थ के अधीन है, किंतु उसका बीज के रूप में अंकुरित होना काल के अधीन है। यदि बीज सही है तो उचित समय आने पर वह अंकुरित होगा। पेड़ के रूप में विकसित होना उसकी नियति पर निर्भर करता है। हो सकता है कोई उसे पेड़ बनने से पूर्व ही नष्ट कर दें। उसमें लगने वाले फल बीज के स्वभाव के अनुसार ही होंगे। बीज में मीठे फल उत्पन्न करने की शक्ति है तो फल मीठे होंगे और यदि खट्टे फल उत्पन्न करने की शक्ति है तो फल खट्टे होंगे। पेड़ कब तक रहेगा यह उसके आश्रित जीवों के आयुष्य कर्म पर निर्भर करता है। इस प्रकार किसी भी घटना में किसी एक कारण या कारक को उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता है। अनेक कारकों के योग से ही कोई घटना घटित होती है।

स्याद्वाद वस्तुतः सत्य को व्यापक संदर्भ में देखने की एक पद्धति है। यह सत्याशों को जोड़कर पूर्ण सत्य तक पहुंचने का एक विनम्र प्रयास है। यह सत्य को किसी संदर्भ विशेष तक सीमित नहीं करता अपितु भिन्न–भिन्न देश, काल, व्यक्ति और परिस्थिति के संदर्भ में उसे देखने, जानने और समझने का प्रयास करता है। सत्य असीम है और उसकी अभिव्यक्ति शब्दों में संभव नहीं है। ऐसी स्थिति में चिंतन की उदारता, अनाग्रह और सत्यग्राही दृष्टि के अभाव में किसी भी मत और कथन की सत्यता को जानना कठिन है। स्याद्वाद और अनेकांतवाद जैसे सिद्धांत चिंतन की उदारता, अनाग्रह और सत्यग्राही दृष्टि के विकास में सहायक है।